International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
December- 2016, Volume-3, Issue-6 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और धूमिल की कविताएँ

डॉ. नागेश्वर यादव
विभागाध्यक्ष हिन्दी
होजाई कॉलेज,होजाई,असाम,782435

शोध-सारांश-

समकालीन हिन्दी कवियों में सबसे सशक्त कवि के रूप में सुदामा पाण्डेय धूमिल का नाम लिया जाता है, जो अपनी बेलौस भाषा, स्पष्टवादिता, जुझारूपन और विद्रोही स्वभाव के लिए विख्यात हैं। शिल्प एवं सम्वेदना की दृष्टि से ये जितने लोकप्रिय हैं, उतने विवादास्पद भी। प्रत्येक साहित्यकार की सृजनात्मक चेतना अपने युगीन परिवेश से निर्मित होती है और युगबोध के रुप में वह साहित्य में अभिव्यक्त होती है। यही कारण है धूमिल कविता को एक सार्थक वक्तव्य मानते थे। वह वक्तव्य चाहे बौखलाए हुए आम आदमी का ही क्यों न हो। बशर्ते कि उससे समकालीन परिवेश को समझा भी जा सके और बदला भी जा सके। समकालीन अर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक सभी प्रकार की गतिविधियों की गहरी समझ धूमिल को थी, परन्तु उनकी सबसे पैनी नजर राजनैतिक गतिविधियों पर थी, जिसके बदौलत उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को व्यंग्यात्मक शैली में उधेड़ कर रख दिया है। धूमिल के द्वारा व्यवस्था के प्रति प्रकट किए गए आक्रोश, विद्रोह, खीझ आदि को देखकर लगता है कि उनकी कविताएँ अपने समय से ही साक्षात्कार नहीं करती हैं, अपितु वर्तमान राजनैतिक परिप्रेक्ष्य का भी जीवन्त दस्तावेज प्रस्तुत करती हैं। समाज की सड़ी-गली मान्यताओं, टूटती हुई परम्पराओं के गर्भ से जन्मी मूल्यहीनता तथा मूल्यहीनता से उपजी स्वार्थपरता और भ्रष्टाचार ने आज और अधिक अराजकता, जड़ता और दिशाहीनता को बढ़ा दी है। सामाजार्थिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक दृष्टि से धूमिल की रचनाओं को आधार बनाकर अनेक शोधकार्य हुए हैं। परन्तु उनकी रचनाओं के आलोक में अपने यगीन परिवेश को जाँचने-परखने का कार्य कम हुआ है। ऐसे में जरूरी हो जाता कि धूमिल की कविताओं के बहाने अपने युगीन परिवेश की राजनीतिक गतिविधियों को बारीकी से समझें और उन कारणों को ढूँढ़ने का प्रयत्न करें जिनके कारण देश के युवाओं में व्यवस्था के प्रति दिन-प्रति दिन अनास्था और विद्रोह के भाव बढ़ते जा रहे हैं। प्रस्तावित शोधपत्र इसी दिशा में कार्य करने का एक विनम्र प्रयास है।

बीज शब्द-

मूल्यहीनता-(किसी विशिष्ट क्षेत्र में मूल्यों का गिरावट), दस्तावेज-(ऐसा आधिकारिक पत्र जिस पर प्रमाणस्वरूप हस्ताक्षर अंकित हो),समकालीन- (एक ही समय में घटित होना),सृजनात्मक चेतना-(चिन्तन की वह प्रक्रिया जो व्यक्ति विशेष को रचना के क्षेत्र में प्रवृत्त करता है) । विडम्बना-(अपेक्षित और घटित के बीच होने वाली असंगति)

धूमिल के तीनों काव्य-संग्रह 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र'के अवलोकन से ज्ञात होता है कि व्यवस्था के प्रति उनके द्वारा प्रकट किए गए आक्रोश, खीझ और विद्रोह मानो आज के युवा मानस का ही विद्रोह है। भारत की वर्त्तमान परिदृश्य पर नजर दौड़ाने से पता चलता है कि किस प्रकार समाज का एक वर्ग सिद्धान्त एवं नैतिकता को ताख पर रखकर भौतिक साधनों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने में लगा हुआ है और लोगों को भय, दहशत, आतंक, अनास्था, निराशा, कुंठा, संत्रास और घूटन भरी जीन्दगी जीने के लिए बाध्य कर दिया है। साथ ही "राजनीति में घुसी सिद्धान्तहीनता, सत्ता के प्रति अपार मोह, खोखली नारेबाजी, दिशाहीनता और लोकतंत्री व्यवस्था के नाम पर दोगली राजनीति देश को प्रगति के बजाये अधोगति की ओर ले जा रही है।"[1] समाज के समर्थ लोग अपने स्वार्थ से उपर उठकर सोचने के बजाय सत्ताधारियों से समझौता करने में मशगुल हैं। स्वाधीनता के बाद स्वस्थ राजनीति और आदर्श राजनेता का जो चरित्र उभरने की आशा थी, वह आज भी पूरी नहीं हो सकी। अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर देश का चौथा स्तम्भ माने जाने वाला तंत्र (प्रिंट एवं इलेक्ट्रोनिक मिडिया) किसी राजनीतिक दल विशेष का प्रवक्ता की भूमिका निभाने लगता है। गरीबों की बेवसी और लचारी, उनकी धार्मिक मान्यताएँ कैसे सत्ता के गलियारों तक पहुँचने का मार्ग बन जाती हैं। एक बात और कि जब कोई "वस्तु निष्क्रियता की काई के नीचे दबकर सड़ने और बदबू देने लगता है या दुर्गन्ध फैलाता है तब उसे खँगालने-आमूलचूल हलचल उत्पन्न करने की जरुरत होती है। उसके ठहराव को तोड़ने से कभी-कभी काई तो छँट जाती है, किन्तु उसे साफ करने के लिए कीट नाशक द्रव्यों का सदुपयोग अनिवार्य हो जाता है।"[2] इतने पर भी वह पेय-योग्यता अर्जित नहीं कर लेता तो उसे गरमा कर, उबाल कर प्रकृत रुप में लाने के वैज्ञानिक तरीके अपनाए जाते हैं, उसी तरह समाज विशेष को गति देने, उसकी जड़ता को तोड़ने के लिए कलाकारों ने भाषा के हथियार से संघर्ष और क्रान्ति का रासायन तैयार किया है। इसके द्वारा वह प्रचलित व्यवस्था के प्रति आक्रोश, विद्रोह और परिवर्तन के स्वर को मुखरित करता है, जनता को उसके अधिकारों और कर्तव्यों से परिचित कराता है। परिवर्तन का यह स्वर (विशेषकर राजनीतिक परिवर्तन) धूमिल की कविताओं में सबसे अधिक सुनाई पड़ता है।

विभिन्न आलोचकों एवं साहित्येतिहासकारों ने सन् 1960 से लेकर सन्1980 तक की रचित कविताओं को समकालीन कविता माना है। इसका पहला दौर निषेध और नकार का दौर है तो दूसरा दौर तत्कालीन व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह और आक्रोश का। धूमिल इसी दूसरे दौर से सबसे सशक्त और महत्वपूर्ण कवि माने जाते हैं। उनकी कविता का प्रारम्भ तो अकविता आन्दोलन के गर्भ से हुआ किन्तु समापन लोहियावादी समाजवाद की प्रतिबद्धता में। हिन्दी काव्य परम्परा के विकास पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि सुदामा पाण्डेय उर्फ धूमिल कबीर, निराला और मुक्तिबोध की परम्परा के कवि हैं, जिन्होंने अन्याय, अत्याचार, शोषण और भ्रष्ट व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति की जमीन तैयार की है।

धूमिल की पहली कविता 'बैलमुत्ती इबारत' से लेकर अंतिम कविता 'लोहे के स्वाद' तक के अध्येयता इस बात से अवगत हैं कि उनके काव्य का मूल उत्स गंवई अनुभव और किसानी संस्कार होने के बावजूद भी उनमें राजनीतिक प्रतिबद्धता शुरु से अंत तक विद्यमान है। ऐसा लगता है मानो पहली बार हिन्दी कविता संसद में विरोध के दरवाजे से प्रवेश करती है और बखूबी स्वाधीन भारत में आम आदमी तथा उसकी दुर्दशा का प्रश्न उठाती है। आजादी, प्रजातंत्र, समाजवाद, चुनाव, संसद, प्रेम, प्यार, धर्म, देश, नेता और राजनीति के खोखलपन को बेनकाब करने में जितनी सफलता धूमिल की कविता को मिली है उतनी शायद ही किसी और कवि को मिली हो। धूमिल की कविता गरीबी, बेरोजगारी और भूखमरी की पीड़ा से सन्तप्त उन करोड़ों लोगों की कविता है, जिसमें एक ओर उनकी बेवशी, लाचारी, हाय, खीझ, आक्रोश और विद्रोह की अनुगूँज सुनाई पड़ती है तो दूसरी तरफ देश के वकील, अध्यापक, वैज्ञानिक, डाक्टर, चिन्तक, लेखक एवं कवियों की दोहरी मानसिकता को उजागर करती है, जो मतलब के इबारत से होकर सबके-सब व्यवस्था के पक्ष में चले गए हैं, सत्ताधारियों से हाथ मिलाकर शोषण, अन्याय एवं अत्याचार को बढ़ावा दे रहे हैं। धूमिल की मान्यता है कि इस वर्ग की मौन स्वीकृति प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में जंगलराज की प्रस्थान बिन्दु है, जहाँ घोड़े और घास, भेंड़ और भेड़िये को लूटने की समान छुट मिली हुई है और उस आदमी की तलाश कभी पूरी नहीं हो पाती है, जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है, सिर्फ भाषा, धर्म, सम्प्रदाय और जाति के नाम पर रोटी से खेलता है। अपनी लुभावने नारों की बैशाखियाँ थमाकर देश के युवाओं को उस चौराहे पर छोड़ देता है, जहाँ से दिशाहीनता, भटकाव, निराशा, हतासा और कुंठा, खीझ, आक्रोश एवं विद्रोह का जन्म होता है। सही मायने में धूमिल की कविता जनतंत्र, संसद, संविधान, एवं प्रजातंत्र के खोखलेपन को बेनकाब करती है।

धूमिल की कविताओं में तत्कालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक गतिविधियों का स्वर तो मुखरित हुआ ही है, किन्तु उनमें सबसे अधिक तीव्र एवं उच्चा स्वर राजनीतिक गतिविधियों का है। और हो भी क्यों न क्योंकि "हमारे सामाजिक जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसका दामन राजनीति के लम्बे हाथों से अछूता रहा हो। राजनीति हमारे जीवन से इस तरह से सम्बद्ध हो गई है कि हम यदि उससे सम्बन्ध रखना न भी चाहे तो भी उससे मुक्त नहीं हो सकते हैं। हमारा प्रभाव चाहे राजनीति पर न पड़े किन्तु राजनीति का प्रभाव अवश्य ही हम पर पड़ता है।"[3]

यहाँ इस बात का खुलासा करना जरुरी है कि कविता और राजनीति का आपसी सम्बन्ध कैसा होना चाहिए ? कविता का राजनीति से सम्बन्ध इस अर्थ में नहीं है कि कवि कविता के माध्यम से किसी राजनैतिक दल के सिद्धातों या उसकी विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार हेतु आकाश-पताल एक कर दे और न ही इस अर्थ में है कि वह बतलाए कि अमुक राजनीतिक पार्टी अच्छी है, अमुक खराब। बल्कि कविता का राजनीति से सम्बन्ध इस अर्थ में है कि कवि जन साधारण में राजनीतिक चेतना का भाव भरे तथा राजनीतिक प्रभाव के कारण उत्पन्न अराजकता एवं अव्यवस्था के प्रति सार्थक आक्रोश एवं विद्रोह की चेतना जगाए ,ताकि जनसाधारण अपने सामाजिक जीवन में परिवर्तन के लिए एकजुट हो सकें।

कवि की प्रतिवद्धता राजनीति के कारण फैली क्रूरता, हिंसा और मानवीय स्वतंत्रता को वाधित करने वाली शक्तियों का विरोध करना होना चाहिए। इतना ही नहीं कवि की प्रतिबद्धता इस बात में होनी चाहिए कि वह जन साधारण में इस बात को बोध कराये कि सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के स्वरुप निर्धारण में उनकी भी भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। धूमिल की कविताओं में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना को इसी अर्थ में देखना चाहिए। उनकी अधिकांश कविताएँ स्वाधीन भारत का एक दहकता हुआ दस्ताबेज है, जिसमें व्यवस्था के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश के अंगारे सुलग रहे हैं। धूमिल ने जिस समय काव्य-रचना के क्षेत्र में पदार्पण किया था उस समय देश अनेक जटिल समस्याओं से जूझ रहा था। स्वाधीनता के पहले राजनीति में कदम रखने का अर्थ होता थी- त्याग के लिए तैयार होना परन्तु स्वाधीनता के बाद राजनीति में प्रवेश का अर्थ होने लगा- सत्ता का अधिकार स्थापित करना। अपनी लम्बी कविता पटकथा में धूमिल लिखते हैं-

" हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक/ फैला हुआ/ जली हुई मिट्टी का ढ़ेर है/जहाँ हर तीसरी जुबान का मतलब/ नफ़रत है/ साज़िश है।/ अंधेर है। यह मेरा देश है। और यह देश की जनता है। जनता क्या है ---एक भेंड़ है जो दूसरों की ठंढ़ के लिए अपनी पीठ पर ऊन की फसल ढ़ो रही है।"[4] (पट कथा से पृ.सं.105)

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि का मोहभंग तो चित्रित हुआ ही है साथ ही उन्हें जनता पर दया और क्रोध भी आ रहा है क्योंकि जनता देश में चारो ओर व्याप्त नफरत, साजिश और भ्रष्टाचार के खिलाफ उवाज नहीं उठा रही थी। आज भी लोग किसी के विरुद्ध अवाज उठाने में डरते हैं। धूमिल जनता की इस मजबूरी और विवशता का मूल कारण भूख, गरीबी और अशिक्षा को मानते हैं-

"चन्द चलाक लोगों ने/ जिनकी नरभक्षी जीभ ने पसीने का स्वाद चख लिया है/ बहस के लिए /भूख की जगह /भाषा को रख दिया है। उन्हें मालूम है कि भूख से / भागा हुआ आदमी भाषा की ओर जाएगा।"[5] (भाषा की रात से पृ-सं.-89)

पेट की आग से त्रस्त जनता 'चीख' के स्थान पर 'चुप' की मुद्रा अपनाने के लिए विवश है, आँसू का घूँट पीना ही उसकी नियति बन गई है-

"वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं

और पेट की आग से डरते हैं।"[6] (मोचीराम पृ- 43)

"सचमुच मजबूरी है / जिन्दा रहने के लिए /

पालतू होना जरुरी है।"[7] - (शहर का व्याकरण, पृ.58)

पतझड़ कविता में धूमिल ने अपने देश को नौजवानों की हताशा, निराशा और बेचैनी का शब्द चित्र खिंचते हुए लिखते हैं-

"मैंने रोजगार दफ्तर से गुजरते हुए /नौजवानों को/ यह साफ-साफ कहते हुए सुना है-/ इस देश की मिट्टी में /अपने जाँगर का सुख तलाशना /अंधी लड़की की आँखों में/ उससे सहवास का सुख तलाशना है।"[8] (पतझड़ से पृ.सं. 61)

साधारण जनता जो असहाय, अशिक्षित और कमजोर है उसकी मजबूरी तो समझ में आती है, किन्तु जब समर्थ लोग चन्द टुच्ची सुविधाओं के लिए अपने आत्मस्वाभिमान, नैतिकता और दायित्व को ताख पर रखकर सत्ताधारियों से हाथ मिला लेते हैं तो धूमिल आग बबूला हो उठते हैं। देश की साधारण जनता ही नहीं मध्यवर्गीय जनता भी व्यवस्था का शिकार होती जा रही थी तथा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाते जा रही थी। धूमिल इस समझौतावादी नीति का माखौल उड़ाते हुए लिखते हैं-

"मैंने जिसकी पूँछ उठाई है उसको मादा/ पाया है।

---------- -------- ------ --

वे वकील हैं।/ वैज्ञानिक हैं। / अध्यापक हैं। / नेता हैं। / दार्शनिक हैं। / लेखक हैं।/ कवि हैं। / कलाकार हैं। यानी कि - आज के अधिकांश बुद्धिजीवी –

कानून की भाषा बोलता हुआ / अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।" [9] (पटकथा, पृ. 126)

शासन-प्रशासन की वागडोर सम्भलने वाले नौकरपोश सत्ताधारियों की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करना चाहता है। धूमिल इस बात का खुलासा करते हुए लिखते हैं कि देश की बागडोर सम्भालने वाले शासक तो निहायत भ्रष्ट और कमीना हैं ही साथ ही लेखक, कवि, वकील, सरकारी कर्मचारी भी -

"मतलब की इबारत से होकर /सबके सब व्यवस्था के पक्ष में / चले गए हैं।"[10] (नक्सलबाड़ी,पृ.-68) यदि यही स्थिति बनी रही तो व्यवस्था को कभी भी बदला नहीं जा सकता है। क्योंकि राजनेता अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से जनता को प्रजातंत्र की लुभावने सपने दिखाने में महारत हासिल किये हुए हैं, आज जरुरत है उनकी असलियत को पहचानने की, उनसे जवाब मांगने की, धूमिल की निड़र और पारखी नजरें उनकी दोगली नीति को जानती है। इसीलिए वे जनता को प्रबोधित करते हुए कहते हैं-

" मगर तुम्हारे लिए कहा गया हर वाक्य,

एक धोखा है जो तुम्हें दलदल की ओर ले जाता है

--------- -------- ------ ----

इसीलिए मैं फिर कहता हूँ कि हर हाथ में

गीली मिट्टी की तरह –हाँ-हाँ- मत करो

तनो/ अमरबेलि की तरह मत जियो/ जड़ पकड़ो

बदलो- अपने-आपको बदलो

यह दुनिया बदल रही है/ और यह रात है/ सिर्फ रात...

इसका स्वागत करो/

यह तुम्हें शब्दों के नये परिचय की ओर लेकर चल रही है।"[11](प्रौढ़ शिक्षा से पृ.48-49)

धूमिल को मालूम थी कि जनता इतनी असानी से समझने वाली नहीं है। इसीलिए वे आजादी, प्रजातंत्र, चुनाव, संसद, समाजवाद की असलियत से जनता को परिचित कराते हुए उन्हें प्रचलित व्यवस्था से विद्रोह के लिए प्रेरित करते हैं-

"क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है

जिन्हें एक पहिया ढ़ोता है

या इसका कोई खास मतलब होता है ?"[12] (बीस साल बाद पृ. सं.-12)

आजादी के बीस साल बाद भी जब जनता बेकारी, भूखमरी, भ्रष्टाचार और जाति-पाँति के दलदल से नहीं उबर पाई तो उन्हें लगने लगा कि तथाकथित यह लोकतान्त्रिक चुनाव कुछ और नहीं भोली-भाली जनता की आँख में धूल झोंकने और उसे झाँसा देने का साधन मात्र है। गौरतलब है कि आज भी देश की स्थिति बदली नहीं है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय और भाषा के नाम पर जनता किस प्रकार से ठगी जाती रही है, जनता में आक्रोश उसी प्रकार से है किन्तु वे गुलामी की मानसिकता को त्यागने के लिए अभिव्यक्ति के खतरे को उठाने से डरती है। महाराष्ट्र सरकार और अर्नव गोस्वामी का मामला इसका ज्वलंत उदाहरण है। आज देश में जोड़-तोड़ और खरीद-फरोख की जो राजनीति का प्रचलन हो चला है उसमें प्रजातान्त्रिक चुनाव के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लग गया है। क्योंकि नागरिकों में जाति-पाँति, धर्म-सम्प्रदाय से उपर उठकर एक योग्य प्रतिनिधि का चयन करने की मानसिकता वैसे ही गायब हो गई है जैसे चील के घोंसले से मांस। ऐसे में धूमिल द्वरा चुनाव को 'अधमरा पशु' की संज्ञा देना बिलकुल सटीक लगता है –

"चुनाव-

मुझे लगता है कि एक विशाल दलदल के किनारे

बहुत बड़ा अधमरा पशु पड़ा हुआ है

उसकी नाभी में सड़ा हुआ एक घाव है

जिससे लगातार-भयानक बदबूदार मवाद

बह रहा है

उसमें जाति और धर्म और सम्प्रदाय और

पेशा और पूँजी के असंख्य कीड़े

किलबिला रहे हैं।" [13] (पटकथा, पृ.सं-119)

परिणामस्वरुप यह जनतांत्रिक व्यवस्था अराजकता में परिवर्तित हो गया जिसमें समता और स्वतंत्रता के नाम पर ' जिन्दा रहने के लिए घोड़े और घास को एक जैसी छूट है।'[14] (पटकथा, पृ.106) तो स्वाभाविक है कि इसमें हार सदैव घास (कमजोरों) की होगी और जीत घोड़े (शक्तिशालियों) की। जनतंत्र एक ऐसा तमाशा बनकर रह गया है जिसकी जान मदारी भाषा है। मदारी के इशारे पर जैसे बन्दर अपनी भाव-भंगिमाओं को दिखाता है ठीक उसी प्रकार सत्ताधारियों के इशारे पर देश की सारी गतिविधियाँ परिचालित होती हैं। ऐसी तथाकथित प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जनता कितनी विवश एवं लाचार है, उसका कलुषित चित्र कवि की निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"लोहे का स्वाद लोहार से मत पूछो

उस घोड़े से पूछो जिसके मुँह में लगाम है।" [15] ('कल सुनना मुझे' लोहे का स्वाद, अस्मिता में पृ.सं.- 59)

कवि 'रोटी और संसद' जैसी अत्यंत अपनी छोटी कविता में जब निडरतापूर्वक जनता के प्रतिनिधियों से कैफियत माँगता है कि वह "तीसरा आदमी कौन है, जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है, वह सिर्फ रोटी से खेलता है" तो अहसास होता है कि समाज का बुद्धिजीवी अपनी कलम से क्रान्ति का मशाल जला रहा है। किन्तु वर्तमान परिदृश्य में तो अधिकांश लोग सच को सच और झूठ को झूठ कहने से कतराते हैं, ड़रते हैं और इसी डर का लाभ उठाकर राजनेता अपनी स्वार्थ की रोटी सेंकते हैं। यही डर, यही गलती उनके लिए जिरहबख्तर (कवच) बन गया है। वर्ना एक बार जब जनता इससे मुक्त होकर अपनी बदहाली का कैफियत माँगने के लिए कमर कस ले तो उनका धाक बालू की रेत की तरह बिखर जाएगा।

राजनीति की जितनी गहरी पकड़ धूमिल को थी उतनी अन्य कवियों की नहीं परन्तु उन्होंने किसी पार्टी विशेष की बात नहीं की उनकी नजर में कोई ऐसी पार्टी नहीं थी जो जनती की मजबूरी और विवशता को समझकर उसकी भलाई के लिए कार्य करें। सभी एक ही थाली के चट्टे-बट्टे थे जैसे आज हैं, मौका परस्त, निहायत चरित्रहीन और क्रूर। अपनी सत्ता-सुख के लिए ये कुछ भी करने के लिए तैयार रहते हैं-

"हाँ यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं/ सिर्फ, टोपियाँ बदल गई हैं और-

सच्चे मतभेद के अभाव में / लोग उछल-उछल कर

अपनी जगहें बदल रहे हैं।[16] (पटकथा, पृ. 125)

नेताओं के इन कार्य-कलापों से छुटकारा पाने के लिए धूमिल जनता को क्रान्ति के लिए प्रबोधित करते हैं, किन्तु बिल्कुल संगठित और सशक्त तरीके से। असंगठित विद्रोह की परिणति क्या होती है, उस पर कटाछ करते हुए वे लिखते हैं-

" क्रान्ति-

यहाँ के असंग लोगों के लिए /किसी अबोध बच्चे के-

हाथों की जूजी है।" (अकाल दर्शन, पृ. -20)

उपर्युक्त विवेचन–विश्लेषण के पश्चात यह कहा जा सकता है कि गहरे सामाजिक और राजनीतिक प्रतिबद्धता से सरोकार रखने वाले कवि धूमिल की तरह ही आज के कवि एवं साहित्यकारों को आपना उत्तरदायित्व निभाना चाहिए। अपने अनुभव और संस्कार के द्वारा भाषा में एक नई भंगिमा, नया मुहावरा और उसमें नया अर्थ भरें ताकि जन साधारण राजनीतिक विद्रूपता, विसंगति और विडम्बना से परिचित हो सके और बेबाक तथा बेलौस तरीके से दो टूक जबाव मांग सके, अपने दायित्वों और अधिकारों से परिचित होकर देशहित में अपनी रचनात्मक उर्जा का प्रयोग कर सके। 'आजादी और गाँधी के नाम पर, जाति-धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर, प्रजातन्त्र और समाजवाद के नाम पर, भाषा और क्षेत्रीयता के नाम पर, शासन, सुरक्षा, शिक्षा और रोजगार के नाम पर हो रही टुच्ची राजनीति के घिनौने रुप को पहचान सके तथा बेहतर कल के लिए अपनी अवाज बुलन्द कर सके। आज समय की मांग है कि कवि और पाठक दोनों अपने-अपने गुरु दायित्व का निर्वाह करें। क्योंकि जनता की जो स्थिति धूमिल के जमाने में थी, उससे भी भयावह स्थिति आज है। उन्हीं के शब्दों में –

"मेरे सामने वही चिरपरिचित अन्धकार है/ संशय की अनिश्चयग्रस्त ठंढ़ी मुद्राएँ हैं/ हर तरफ/ शब्दभेदी सन्नाटा है। दरिद्र की व्याथा की तरह/ उचाट और कूँथता हुआ। घृणा में डूबा हुआ सारा का सारा देश/ पहले की तरह आज भी/ … कारागार है।"[18] (पटकथा से पृ.सं.-127)

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने जिस 'चिरपरिचित अन्धकार' का बीम्ब प्रस्तुत किया है, वह रोजी-रोटी, शिक्षा-स्वास्थ्य, शान्ति-सुरक्षा,मान-सम्मान सभी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस दृष्टि से देखें तो भारत का कोई भी ऐसा राज्य नहीं है जो 'दरिद्र की व्याथा की तरह/उचाट और कूँथता हुआ' न दिखाई दे। सर्वत्र प्रेम और सौहार्द के स्थान पर घृणा और द्वेष के भाव विराजमान हैं। औपन्वेसिक सत्ता में जो दुख थे वे स्वाधीनता के पच्हत्तर साल गुजरने के बाद भी बना रहे तो इसे आजादी कहना उचित होगा या मात्र सत्ता का हस्तांतरण ? आज देश की अधिकांश जनता अपने प्रतिनिधियों से ऐसी उम्मीद लगाए बैठी है कि- "अब कोई बच्चा / भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा / अब कोई छत बारिश में/ नहीं टपकेगी/ अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में/ अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा।[19]" वैसी ही उम्मीद धूमिल के जमाने में भी जनता लगाई थी परन्तु पुरी नहीं हुई। क्योंकि धूमिल के जमाने में भी सत्ता और कुर्सी का

मालिक जन-सेवा की भावना का परित्याग करके स्वयं सुख भोगने व्रत ले चूका था र आज के राजनेता भी। कवि का निम्नलिखित कथन आज भी उतना ही सच जान पड़ता है जितना उनके जमाने में था- "अब ऐसा वक्त गया है जब कोई/ किसी का झुलसा हुआ चेहरा नहीं देखता है/ अब न तो कोई किसी का खाली पेट/ देखता है, न थरथराती हुई टाँगें और न ढ़ला हुआ "सूर्यहीन कंधा" देखता है/ हर आदमी, सिर्फ, अपना धंधा देखता है / सबने भाई चारा भुला दिया है/ आत्मा की सरलता को मारकर/ मतलब के अंधेरे में सुला दिया है।"[20] (पटकथा से-पृ.सं.- 109) चन्द टुच्ची सुविधाओं के लालच में जब–जब अभियोग की भाषा चुकती रहेगी तब–तब समाज इन समस्याओं से जुझता रहेगा। आज जरुरत है अपनी ऊब (कुंठा हताशा, निराशा, टीस एवं आक्रोश) को आकार देने की, उन्हें जगाने की, दूसरों की गलती निकालने के पूर्व अपनी गलती सुधारने की, मतलब से परे रहकर सच को सच और झूठ को झूठ कहने की हिम्मत जुटाने की,अपना अधिकार माँगने के पूर्व अपना कर्तव्य निर्वाह करने की और बेहतर कल के लिए धूमिल की निम्नांकित पंक्तियों में अभिव्यक्त भाव को अक्षरश: पालन करने की -

" अब वक्त आ गया है कि तुम उठो/ और अपनी ऊब को आकार दो। ....उसे जगाओ और देखो- कि तुम अकेले नहीं हो/ और न किसी के मोहताज हो/ लाखों हैं तुम्हारे इन्तजार में खड़े हैं / वहाँ चलो। उनका साथ दो।"[21] (पटकथा से-पृ.सं.- 114-15)

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. कठघरे का कवि धूमिल- डॉ. गणेश तुलसीराम अष्टेकर,पंचशील प्रकाशन, जयपुर प्रथम प्रकाशन 1979, पृ.सं. -58
2. समकालीन कविता एक विश्लेषण- अशोक सिंह,लोकभारती प्रकाशन महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहावाद-1 प्रथम प्रकाशन 1990, पृ.सं.-110-111
3. धूमिल के काव्य का सामाजिक सन्दर्भ, डॉ. धर्मपाल पीहल, अन्नपूर्णा प्रकाशन, साकेत नगर कानपुर -14 प्रथम प्रकाशन 2000, पृ.सं. 16
4. संसद से सड़क तक, धूमिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली -02 प्रथम प्रकाशन 2013, पृ. सं.- 105
5. पूर्ववत् पृ.सं. 89 भाषा की रात नामक कविता से
6. पूर्ववत् पृ.सं. 43 मोचीराम
7. पूर्ववत् पृ.सं. 58 शहर का व्याकरण
8. पूर्ववत् पृ.सं. 61 पतझड़
9. पूर्ववत् पृ.सं. 126 पटकथा
10. पूर्ववत् पृ.सं. नक्सलबाड़ी,पृ.सं.-68 प्रौढ़ शिक्षा
11. पूर्ववत् पृ.सं. 48-49 प्रौढ़ शिक्षा
12. पूर्ववत् पृ.सं. 12 बीस साल बाद
13. पूर्ववत् पृ.सं. 119 पटकथा
14. पूर्ववत् पृ.सं. 106 पटकथा
15. अस्मिता, डॉ. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव एवं डॉ जितेन्द्रनाथ पाठक द्वारा सम्पादित, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,तृतीय संस्करण 1992, पृ.सं.- 59
16. संसद से सड़क तक, धूमिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली -02 प्रथम प्रकाशन 2013, पृ. सं.-125
17. पूर्ववत् पृ.सं. 20
18. पूर्ववत् पृ.सं.127
19. पूर्ववत् पृ.सं.101
20. पूर्ववत् पृ.सं.109
21. पूर्ववत् पृ.सं.114-15